

## **Chapter पन्द्रह**

### **नारद तथा अंगिरा ऋषियों द्वारा राजा चित्रकेतु को उपदेश**

इस अध्याय में अंगिरा ऋषि नारद सहित राजा चित्रकेतु को ढाँढस बँधाते हैं। वे दोनों राजा

को अत्यधिक शोक से विमुक्त करने और उसे जीवन के आध्यात्मिक महत्त्व के विषय में उपदेश देने के लिए आये थे।

अंगिरा मुनि तथा नारद मुनि ने बताया कि पिता तथा पुत्र का सम्बन्ध वास्तविक नहीं है; यह माया का प्रदर्शन मात्र है। यह सम्बन्ध न तो पहले था, न भविष्य में रहेगा। काल की व्यवस्था से इस सम्बन्ध का अस्तित्व वर्तमान काल में ही रहता है। मनुष्य को क्षणिक सम्बन्धों के लिए शोक नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण दृश्य जगत क्षणिक है; यद्यपि यह असत्य नहीं है, किन्तु फिर भी यह वास्तविक नहीं है। भगवान् के आदेश से इस संसार में उत्पन्न प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है। अस्थायी व्यवस्था से पिता के पुत्र उत्पन्न होता है या जीवात्मा तथाकथित पिता का पुत्र बनता है। यह अस्थायी व्यवस्था परमेश्वर द्वारा की जाती है। न तो पिताका, न ही पुत्र का कोई स्वतंत्र अस्तित्व होता है।

जब राजा ने इन ऋषियों का उपदेश सुना तो उसे मिथ्या शोक से राहत मिली और तब उसने उनका परिचय जानना चाहा। उन ऋषियों ने अपना परिचय दिया और उपदेश दिया कि सारे कष्टों की जड़ यह देहात्मबुद्धि है। जब मनुष्य आध्यात्मिक बोध प्राप्त कर लेता है और अपने को परम पुरुष भगवान् को समर्पण कर देता है तब वह सचमुच सुखी हो जाता है। जब मनुष्य भौतिक पदार्थ में सुख की खोज करता है, वह निश्चय ही देह-धारी सम्बन्धों के लिए शोक करता है। आत्म-साक्षात्कार का अर्थ है कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध का आत्म-बोध; ऐसे बोध से मनुष्य के दुखी भौतिक जीवन का अन्त हो जाता है।

श्रीशुक उवाच

ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ।

शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; ऊचतुः—वे बोले; मृतक—मृत शरीर; उपान्ते—निकट; पतितम्—गिरा हुआ; मृतक-उपमम्—शव के तुल्य; शोक-अभिभूतम्—शोक से अत्यधिक संतप्त; राजानम्—राजा को; बोधयन्तौ—उपदेश देकर; सत्-उक्तिभिः—उपदेशों से, जो क्षणिक नहीं वरन् वास्तविक हैं।

श्री शुकदेव गोस्वामी बोले—जब राजा चित्रकेतु शोकग्रस्त होकर अपने पुत्र के शव के निकट पड़े मृतप्राय हुए थे तो नारद तथा अंगिरा नामक दो महर्षियों ने उन्हें आध्यात्मिक चेतना के सम्बन्ध में इस प्रकार उपदेश दिया।

कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति ।

त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥

### शब्दार्थ

कः—कौन; अयम्—यह; स्यात्—है; तव—तुम्हारे लिए; राज-इन्द्र—राजाओं में श्रेष्ठ; भवान्—आप; यम्—जिसको; अनुशोचति—शोक कर रहे हो; त्वम्—तुम; च—और; अस्य—उसका ( शव का ); कतमः—कौन; सृष्टौ—जन्म में; पुरा—गत; इदानीम्—इस समय; अतः परम्—अतः.

हे राजन्! जिस शव के लिए तुम शोक कर रहे हो उसका तुमसे और तुम्हारा उसके साथ क्या सम्बन्ध है? तुम कह सकते हो कि इस समय तुम पिता हो और वह पुत्र है, किन्तु क्या तुम सोचते हो कि यह सम्बन्ध पहले भी था? क्या सचमुच अब भी यह सम्बन्ध है? क्या यह भविष्य में भी बना रहेगा?

तात्पर्य : नारद तथा अंगिरा मुनि ने जो उपदेश दिये वे मोहग्रस्त बद्धजीव के लिए वास्तविक आध्यात्मिक उपदेश हैं। यह संसार अस्थायी है, किन्तु अपने पूर्वकर्मों के कारण हम यहाँ आते हैं और शरीर धारण करते हैं और समाज, मैत्री, प्रेम, राष्ट्रीयता तथा जन-समूह के रूप में अस्थायी सम्बन्धों की सृष्टि करते हैं, जो मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। ये अस्थायी सम्बन्ध न तो भूतकाल में थे और न भविष्य में रहेंगे। अतः वर्तमान समय में ये तथाकथित सम्बन्ध छलावा हैं।

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन बालुकाः ।

संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; प्रयान्ति—विलग होते; संयान्ति—पास पास आते हैं; स्रोतः—वेगेन—लहरों के वेग से; बालुकाः—बालू के सूक्ष्म कण; संयुन्यन्ते—परस्पर जुड़ते; वियुन्यन्ते—पृथक् होते हैं; तथा—उसी प्रकार; कालेन—काल के द्वारा; देहिनः—देहधारी जीवात्माएँ।

हे राजन्! जिस प्रकार बालू के छोटे-छोटे कण लहरों के वेग से कभी एक दूसरे के निकट आते हैं और कभी विलग हो जाते हैं, उसी प्रकार से देहधारी जीवात्माएँ काल के वेग से कभी मिलती हैं, तो कभी बिछुड़ जाती हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव के अज्ञान का कारण उसकी देहात्मबुद्धि है। यह देह भौतिक है, किन्तु देह के भीतर आत्मा है। यही आत्म-ज्ञान है। दुर्भाग्यवश सांसारिक मोहवश जो व्यक्ति अज्ञान में रहता है, वह देह को ही आत्मा मान लेता है। उसे यह ज्ञात नहीं हो पाता कि देह पदार्थ-स्वरूप है। ये देहें बालू के छोटे-छोटे कणों के समान एक दूसरे के निकट आती और पुनः कालवेग से पृथक् हो जाती हैं। लोग झूठे ही संयोग या वियोग के लिए शोक करते हैं। जब तक वे इसे समझ नहीं लेते तब तक सुख का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः *भगवद्गीता* (२.१३) में भगवान् श्रीकृष्ण का सर्वप्रथम उपदेश यही है—

*देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।*

*तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥*

“जिस प्रकार बद्धजीव को इस देह में क्रम से बालपन, यौवन और वृद्धावस्था की प्राप्ति होती है, उसी तरह मृत्यु होने पर अन्य देह की प्राप्ति होती है। स्वरूपसिद्ध धीर पुरुष इस से मोहित नहीं होता।” हम देह नहीं हैं वरन् हम तो इस देह में बन्दी बने आध्यत्मिक जीव हैं। हमारी वास्तविक रुचि इस सामान्य तथ्य को जान लेने में है। तभी हम आगे आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं। अन्यथा यदि हम देहात्म-बुद्धि में बने रहते हैं। तो हमारा दयनीय भौतिक अस्तित्व सदा-सर्वदा के लिए बना रहेगा। हम शान्ति तथा सुख के लिए कितना ही राजनीतिक तालमेल, सामाजिक कल्याणकार्य, चिकित्सा-सहायता तथा अन्य कार्यक्रम क्यों न बना लें, यह कभी नहीं चल सकता। हमें एक-एक करके भौतिक जीवन के सभी कष्ट उठाने ही होंगे। इसलिए भौतिक

जीवन को दुःखालयं शाश्वतं अर्थात् दुखों का आगार कहा गया है।

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ।  
एवं भूतानि भूतेषु चोदितानीशमायया ॥ ४ ॥

### शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; धानासु—धान के बीजों से; वै—निस्सन्देह; धानाः—अन्न; भवन्ति—उत्पन्न होते हैं; न—नहीं; भवन्ति—उत्पन्न होते हैं; च—भी; एवम्—इस प्रकार; भूतानि—जीवात्माएँ; भूतेषु—अन्य जीवों में; चोदितानि—बाध्य; ईश-मायया—श्रीभगवान् की शक्ति के द्वारा।

जब बीजों को धरती में बोया जाता है, तो वे कभी तो उगते हैं और कभी नहीं उगते। कभी धरती उपजाऊ नहीं रहती जिससे बीजों का बोना निरर्थक हो जाता है। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति से बाध्य होने पर भावी पिता को कभी सन्तान की प्राप्ति होती है, तो कभी गर्भ ही नहीं रहता। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह माता-पिता जैसे बनावटी सम्बन्ध के लिए शोक न करे, क्योंकि अन्ततः इसका नियंत्रण परमेश्वर के हाथों में रहता है।

तात्पर्य : वास्तव में महाराज चित्रकेतु को पुत्र प्राप्त ही नहीं होना था। यद्यपि उसने सैकड़ों हजारों स्त्रियों से विवाह किया, किन्तु वे सभी बाँझ निकलीं और उनसे एक भी पुत्र उत्पन्न नहीं हो सका। जब अंगिरा ऋषि राजा से भेंट करने आये तो राजा ने विनय की कि उसे कम से कम एक पुत्र की प्राप्ति हो जाए। अंगिरा ऋषि के आशीर्वाद से, माया ने अनुग्रह करके एक पुत्र प्रदान किया, किन्तु इस बालक को अधिक काल तक जीवित नहीं रहना था। इसलिए अंगिरा ऋषि ने प्रारम्भ में ही राजा से यह कह दिया था कि उसे पुत्र मिलेगा किन्तु वह उसके हर्ष और शोक का कारण बनेगा।

परमात्मा या विधाता की इच्छा नहीं थी कि चित्रकेतु को कोई सन्तान हो। जिस प्रकार भुने हुए अन्न से अन्न नहीं उत्पन्न हो सकता, उसी प्रकार परमेश्वर की इच्छा से नपुंसक पुरुष के कोई सन्तान नहीं हो सकती। कभी कभी नपुंसक पिता और बाँझ माता से भी सन्तान उत्पन्न हो जाती है, तो कभी पुंसत्व को प्राप्त पिता तथा उर्वर माता से भी सन्तान उत्पन्न नहीं हो पाती। निस्सन्देह,

कभी-कभी गर्भनिरोधक विधियों का प्रयोग करने पर भी सन्तान उत्पन्न हो जाती है, जिससे माता-पिता उसे गर्भ में ही मार देते हैं। इस युग में तो भ्रूण-हत्या (गर्भ में ही सन्तान का वध) सर्वसामान्य बन चुकी है। ऐसा क्यों है? गर्भनिरोधक-विधियों के बावजूद भी ऐसा क्यों होता है? कभी-कभी सन्तान क्यों उत्पन्न होती है, जिस से माता पिता को गर्भ में ही उसका वध करना पड़ता है? इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि हमारी तथाकथित वैज्ञानिक ज्ञान की व्यवस्था यह निश्चित नहीं कर पाती कि क्या होने वाला है; जो कुछ भी होता है, वह तो वास्तव में परमेश्वर की इच्छा पर निर्भर करता है। ईश्वर की इच्छा मात्र से हम परिवार, समुदाय तथा व्यक्तित्व जैसी व्यवस्थाओं में स्थित हैं। ये सारी व्यवस्थाएँ माया के अधीन हमारी इच्छाओं के अनुसार ही परमेश्वर द्वारा सम्पन्न होती हैं। अतः भक्तिकाल में मनुष्य को निष्काम होना चाहिए, क्योंकि सब कुछ भगवान् पर ही निर्भर है। *भक्ति रसामृतसिन्धु* (१.१.११) में कहा गया है—

*अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यिनावृतम् ।*

*आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम् भक्तिरुत्तमा ॥*

“मनुष्य को चाहिये कि सकाम कर्म अथवा मानसिक ऊहापोह से जनित ज्ञान द्वारा भौतिक लाभ-प्राप्ति की इच्छा बिना, अनुकूल भाव से भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा करे। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।” मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभक्ति को बढ़ाने के लिए कर्म करे। अन्य बातों के लिए उसे पूरी तरह परम पुरुष पर निर्भर रहना चाहिए। हमें कभी भी ऐसी योजनाएँ नहीं बनानी चाहिए जिससे हमें अन्ततः उद्विग्न होना पड़े।

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ।

जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनापि भोः ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**

वयम्—हम ( बड़े-बड़े साधु तथा मंत्री एवं राजा के अनुयायी ); च—तथा; त्वम्—तुम; च—भी; ये—जो; च—भी; इमे—ये; तुल्य-कालाः—समकालीन; चर-अचराः—समस्त स्थावर तथा जंगम; जन्म—जन्म; मृत्योः—( तथा ) मृत्यु;

यथा—जिस प्रकार; पश्चात्—बाद में; प्राक्—पहले; न—नहीं; एवम्—इस प्रकार; अधुना—इस समय; अपि—यद्यपि; भो:—हे राजन्!

हे राजन्! तुम तथा हम अर्थात् तुम्हारे परामर्शदाता, पत्नियाँ एवं मंत्री और समस्त सम्पूर्ण जगत में इस समय जितने भी स्थावर-जंगम प्राणी हैं, वे सभी क्षणभंगुर हैं। यह स्थिति न तो हमारे जन्म के पूर्व थी और न हमारी मृत्यु के पश्चात् रहेगी। अतः इस समय हमारी स्थिति क्षणिक ( अस्थायी ) है, यद्यपि वह मिथ्या नहीं है।

तात्पर्य : मायावादी दार्शनिकों का कहना है : ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या—ब्रह्म अर्थात् जीव तो सत्य है, किन्तु उसकी वर्तमान दैहिक स्थिति मिथ्या है। वैष्णव दर्शन के अनुसार वर्तमान स्थिति क्षणिक है, मिथ्या नहीं। यह स्वप्न-तुल्य है। मनुष्य के सो जाने से पूर्व स्वप्न का अस्तित्व नहीं होता न ही उसके जग जाने के पश्चात् रहता है। स्वप्न का अस्तित्व तो इन दोनों स्थितियों के मध्य में रहता है, अतः यह अस्थायी होने के कारण मिथ्या है। इसी प्रकार यह समस्त भौतिक सृष्टि जिसमें हमारी अपनी सृष्टि तथा दूसरों की सृष्टियाँ सम्मिलित हैं, अस्थायी हैं। स्वप्न की स्थिति के लिए न तो सोने के पूर्व और न जागने के पश्चात् ही हम शोक व्यक्त करते हैं। स्वप्न की स्थिति को अथवा स्वप्न जैसी स्थिति को हमें वास्तविक नहीं मान लेना चाहिए, न ही उसके लिए शोक करना चाहिए। यही वास्तविक ज्ञान हैं।

भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्ति च ।

आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६ ॥

### शब्दार्थ

भूतैः—कुछ जीवों से; भूतानि—अन्य जीवात्माओं को; भूत-ईशः—सबके स्वामी, श्रीभगवान्; सृजति—उत्पन्न करता है; अवति—पालन करता है; हन्ति—मारता है; च—भी; आत्म-सृष्टैः—अपने द्वारा उत्पन्न; अस्वतन्त्रैः—पराधीन; अनपेक्षः—( सृष्टि में ) न रुचि रखने से; अपि—यद्यपि; बाल-वत्—बालक के समान।

सबों के स्वामी तथा प्रत्येक वस्तु के मालिक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निश्चय ही क्षणिक दृश्य जगत में तनिक भी रुचि नहीं रखते। तो भी जिस प्रकार समुद्र के किनारे पर बैठा हुआ बालक अनचाही किसी न किसी वस्तु ( घरौंदा ) को बनाता है उसी प्रकार से भगवान्

प्रत्येक वस्तु को अपने वश में रखते हुए सृजन, पालन तथा संहार का कार्य करते रहते हैं। वे पिता से पुत्र उत्पन्न कराकर सृष्टि करते हैं, प्रजा के कल्याण हेतु सरकार या राजा नियुक्त करके पालन करते हैं तथा सर्प जैसे माध्यमों से संहार करते हैं। सृजन, पालन तथा संहारकर्ता माध्यमों की कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं होती, किन्तु माया के सम्मोहन से वे अपने को कर्ता, पालक तथा संहारक मान बैठते हैं।

तात्पर्य : किसी में यह सामर्थ्य नहीं कि वह वास्तव में स्वतंत्र रूप से सृजन, पालन तथा संहार कर सके। अतः भगवद्गीता (३.२७) का कथन है—

*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।*

*अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥*

“प्रकृति के तीन गुणों से भ्रमित होकर मोहग्रस्त जीवात्मा अपने को ही कर्ता मान बैठता है, जब कि समस्त कर्म वास्तव में प्रकृति द्वारा सम्पादित होते हैं।” श्रीभगवान् के निर्देश से प्रकृति गुणों के अनुसार जीवात्माओं को सृजन, पालन तथा संहार के लिए प्रेरित करती है। किन्तु परमात्मा तथा उसकी प्रतिनिधि प्रकृति से अनजान रहकर जीवात्मा अपने को कर्ता मान बैठता है। वास्तव में वह कर्ता है ही नहीं। मनुष्य को परमकर्ता परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। इस समय संसार में जो असन्तोष छाया हुआ है, उसका कारण नेताओं की अविद्या है, जो यह भूल जाते हैं कि श्रीभगवान् ने उन्हें कार्य करने के लिए भेजा है। चूँकि उन्हें ईश्वर ने नियुक्त किया है इसलिए उन्हें चाहिए कि उनसे परामर्श लेकर तदनुसार कार्य करें। परामर्श के लिए भगवद्गीता नामक ग्रन्थ है, जिस में परमेश्वर ने सारे निर्देश दे रखे हैं। अतः जिन्हें ईश्वर ने सृजन, पालन तथा संहार कार्यों के लिए नियुक्त कर रखा है, उन्हें चाहिए कि ईश्वर से परामर्श लेकर उसी के अनुसार कार्य करें। तब प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट रहेगा और कोई अव्यवस्था नहीं फैलेगी।



देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ।

बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थं इव शाश्वतः ॥ ७ ॥

### शब्दार्थ

देहेन—शरीर से; देहिनः—शरीर ( माता के ) में; राजन्—हे राजन्; देहात्—शरीर से ( माता के ); देहः—अन्य शरीर;  
अभिजायते—उत्पन्न होता है; बीजात्—एक बीज से; एव—निस्सन्देह; यथा—जिस प्रकार; बीजम्—अन्य बीज; देही—  
भौतिक शरीरधारी मनुष्य; अर्थः—भौतिक तत्त्व; इव—सदृश; शाश्वतः—शाश्वत.

हे राजन्! जिस प्रकार एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार एक शरीर ( पिता के शरीर ) द्वारा अन्य ( माता के ) शरीर के माध्यम से एक तीसरा ( पुत्र का ) शरीर उत्पन्न होता है। जैसे भौतिक शरीर के तत्त्व नित्य हैं, वैसे ही इन भौतिक तत्त्वों से प्रकट होने वाली जीवात्मा भी नित्य है।

तात्पर्य : भगवद्गीता से यह पता चलता है कि शक्तियाँ दो प्रकार की हैं—उत्कृष्ट (परा) शक्ति तथा निकृष्ट (अपरा) शक्ति। निकृष्ट शक्ति के अन्तर्गत पाँच स्थूल तथा तीन सूक्ष्म भौतिक तत्त्व आते हैं। जीवात्मा जो उत्कृष्ट शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है इन्हीं तत्त्वों के द्वारा भौतिक शक्ति की देख रेख में विभिन्न शरीरों में प्रकट होती है। वास्तव में भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ—पदार्थ तथा आत्मा—नित्य रूप में श्रीभगवान् की शक्तियाँ हैं। शक्तिमय तत्त्व परम पुरुष हैं। चूँकि आध्यात्मिक शक्ति अर्थात् जीव परमात्मा का अंश है और इस भौतिक जगत का भोग करना चाहता है इसलिए ईश्वर उसे छूट देता है कि वह विभिन्न शरीर धारण करके विभिन्न अवस्थाओं में सुख या दुख का भोग करे। वास्तव में यह आध्यात्मिक शक्ति अर्थात् जीवात्मा, परमेश्वर की सृष्टि है। तथाकथित माता तथा पिता का जीव से कुछ लेना-देना नहीं रहता। जीव अपनी रुचि तथा कर्म के फलस्वरूप तथाकथित माता-पिता के माध्यम से विभिन्न शरीर धारण करता है।

देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ।

जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥ ८ ॥

### शब्दार्थ

देह—इस शरीर का; देहि—तथा शरीर धारण करनेवाला; विभागः—विभाजन; अयम्—यह; अविवेक—अविद्या से; कृतः—निर्मित; पुरा—अनादि काल से; जाति—वर्ण या जाति; व्यक्ति—तथा व्यक्ति का; विभागः—विभाजन; अयम्—यह; यथा—जिस प्रकार; वस्तुनि—आदि वस्तु में; कल्पितः—कल्पना किया हुआ।

राष्ट्रीयता तथा व्यक्तिगत सत्ता जैसे सामान्य तथा विशिष्ट विभाजन उन व्यक्तियों की कल्पनाएँ हैं, जो उन्नत ज्ञानी नहीं हैं।

तात्पर्य : वास्तव में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं—भौतिक तथा आध्यात्मिक। वे दोनों नित्य हैं क्योंकि उनका उदय परमेश्वर अर्थात् परम सत्य से होता है। चूँकि व्यक्तिगत आत्मा अर्थात् जीवात्मा चिरकाल से अपनी मूल सत्ता को भूल कर विस्मृति में कार्य करना चाहता है, इसलिए वह विभिन्न शरीर धारण करता हुआ राष्ट्रीयता, समुदाय, समाज, प्रजाति आदि अनेक विभागों से जाना जाता है।

श्रीशुक उवाच

एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।

विमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिप्लानमभाषत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आश्वासितः—आश्वासन दिये जाने पर, समझाने-बुझाने पर; राजा—राजा; चित्रकेतुः—चित्रकेतु ने; द्विज-उक्तिभिः—( नारद तथा अंगिरा जैसे ) ब्राह्मणों के उपदेश से; विमृज्य—पोंछ कर; पाणिना—हाथ से; वक्त्रम्—मुख; आधि-प्लानम्—शोक के कारण मुरझाया; अभाषत—बुद्धिमानों के साथ कहा।

श्री शुकदेव गोस्वामी आगे बोले—नारद तथा अंगिरा द्वारा इस प्रकार समझाये-बुझाये जाने पर राजा चित्रकेतु को ज्ञान के कारण आशा बँधी। राजा अपने हाथ से अपना मुरझाया मुखमण्डल पोंछते हुए कहने लगा।

श्रीराजोवाच

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ।

अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा चित्रकेतु बोला; कौ—कौन; युवाम्—तुम दोनों; ज्ञान-सम्पन्नौ—ज्ञान से पूर्ण; महिष्ठौ—सर्वश्रेष्ठ; च—भी; महीयसाम्—अन्य महापुरुषों में; अवधूतेन—अवधूत के; वेषेण—वेष में; गूढौ—छिपे हुए; इह—इस स्थान पर; समागतौ—आये हुए।

राजा चित्रकेतु ने कहा—आप दोनों अपनी पहचान को छुपाए हुए अवधूत वेश में यहाँ

आये हैं, किन्तु मैं देख रहा हूँ कि सभी पुरुषों में आप दोनों परम ज्ञानवान् हैं। आप सब कुछ जानते हैं, अतः समस्त महापुरुषों से भी आप महान् हैं।

चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ।  
मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥ ११ ॥

### शब्दार्थ

चरन्ति—विचरण करते हैं; हि—निस्सन्देह; अवनौ—पृथ्वी पर; कामम्—इच्छानुसार; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण; भगवत्-प्रियाः—श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय, वैष्णव भी; मा-दृशाम्—मुझ जैसे; ग्राम्य-बुद्धीनाम्—क्षणिक भौतिक चेतना से ग्रस्त; बोधाय—उपदेश करने के लिए; उन्मत्त-लिङ्गिनः—प्रमत्त का-सा वेष बनाये हुए।

श्रीकृष्ण के सर्वाधिक प्रिय सेवक, ब्राह्मणजन, जो वैष्णव पद को प्राप्त हैं, कभी-कभी अवधूतों जैसा वेष बना लेते हैं और हम जैसे भौतिकतावादियों को, जो इन्द्रियतृप्ति में सदैव आसक्त रहते हैं, लाभ पहुँचाने एवं उनकी अविद्या दूर करने के लिए अपनी इच्छानुसार भूमण्डल पर विचरण करते रहते हैं।

कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः ।  
अपान्तरतमा व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥ १२ ॥  
वसिष्ठो भगवान्नामः कपिलो बादरायणिः ।  
दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातुकर्णस्तथारुणिः ॥ १३ ॥  
रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ।  
ऋषिर्वेदशिरा धौम्यो मुनिः पञ्चशिखस्तथा ॥ १४ ॥  
हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ।  
एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥ १५ ॥

### शब्दार्थ

कुमारः—सनत्कुमार; नारदः—नारद मुनि; ऋभुः—ऋभु; अङ्गिराः—अंगिरा; देवलः—देवल; असितः—असित;  
अपान्तरतमाः—अपान्तरतमा, व्यास का पहिले का नाम; व्यासः—व्यास; मार्कण्डेयः—मार्कण्डेय; अथ—तथा;  
गौतमः—गौतम; वसिष्ठः—वसिष्ठ; भगवान् नामः—परशुराम; कपिलः—कपिल; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी;  
दुर्वासाः—दुर्वासा; याज्ञवल्क्यः—याज्ञवाल्क्य; च—भी; जातुकर्णः—जातुकर्ण; तथा—और; अरुणिः—अरुणि;  
रोमशः—रोमश; च्यवनः—च्यवन; दत्तः—दत्तात्रेय; आसुरिः—आसुरि; स-पतञ्जलिः—पतञ्जलि ऋषि समेत; ऋषिः—ऋषि; वेद-शिराः—वेदों का प्रमुख; धौम्यः—धौम्य; मुनिः—मुनि; पञ्चशिखः—पञ्चशिख; तथा—और; हिरण्यनाभः—हिरण्यनाभ; कौशल्यः—कौशल्य; श्रुतदेवः—श्रुतदेव; ऋतध्वजः—ऋतध्वज; एते—ये सभी; परे—अन्य; च—तथा;  
सिद्ध-ईशाः—योगेश्वर; चरन्ति—विचरण करते हैं; ज्ञान-हेतवः—अत्यन्त विद्वान् पुरुष जो सारे संसार में उपदेश देते हैं।

हे महात्माओ! मैंने सुना है कि अविद्या से ग्रस्त मनुष्यों को ज्ञान का उपदेश देने के लिए भूमण्डल-भर में जो महापुरुष विचरण करते रहते हैं उनमें सनत् कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित, अपान्तरतमा (व्यासदेव), मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान् परशुराम, कपिल, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातुकर्ण तथा अरुणि हैं। अन्यो के नाम इस प्रकार हैं—रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतंजलि, वेदों के प्रधान परम साधु धौम्य, पंचशिख, हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव तथा ऋतध्वज। आप अवश्य ही इनमें से हैं।

तात्पर्य : ज्ञानहेतवः शब्द अत्यन्त सार्थक है क्योंकि इन श्लोकों में जिन महापुरुषों की सूची दी गई है, वे भूमण्डल पर जनता को पथभ्रष्ट करने के उद्देश्य से नहीं, वरन् वास्तविक ज्ञान का वितरण करने के लिए विचरण करते हैं। ज्ञान के बिना मनुष्य-जीवन वृथा है। मनुष्य-जीवन का अभिप्राय श्रीकृष्ण या ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को जान लेना है। जिसमें इस ज्ञान का अभाव होता है, वह पशु-तुल्य है। श्रीकृष्ण ने स्वयं भगवद्गीता (७.१५) में कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

“मनुष्यों में अधम और निम्नतम मूढ़ जिनका ज्ञान मोह द्वारा हर लिया गया है और जो आसुरी स्वभाव धारण किये हुए हैं, ऐसे दुष्ट मेरी शरण नहीं लेते।”

अविद्या है जीवन की देहात्मबुद्धि (यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके...स एव गोखरः)। सामान्यतः इस ब्रह्माण्ड में और विशेष रूप से इस भूलोक में प्रत्येक मनुष्य सोचता है कि देह तथा आत्मा का अस्तित्व अभिन्न है, अतः आत्म-साक्षात्कार की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह सत्य नहीं है। इसलिए यहाँ जिन ब्राह्मणों की सूची दी गई है, वे भक्त होने के कारण विश्व-भर का विचरण करके ऐसे मूढ़ भौतिकतावादियों के हृदय में कृष्णभावना जगाते हैं।

इन श्लोकों में जिन आचार्यों के नाम गिनाये गये हैं, उनका उल्लेख महाभारत में हुआ है। पंचशिख शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय की

बुद्धि से मुक्त है और आत्मा के सूक्ष्म कोशों (आवरणों) से परिचित है, वह पंचशिख कहलाता है। महाभारत (शान्ति पर्व, अध्याय २१८.२१९) के अनुसार पंचशिख नामक आचार्य ने मिथिला के राजा महाराज जनक के कुल में जन्म लिया था। सांख्य दर्शनशास्त्री पंचशिखाचार्य को अपने में से एक आचार्य मानते हैं। वास्तविक ज्ञान शरीर के भीतर निवास करने वाले जीव के विषय में है। दुर्भाग्यवश, जीवात्मा अविद्या-वश अपने को शरीर मान लेता है, जिससे उसे हर्ष तथा कष्ट का अनुभव होता है।

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ।

अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; युवाम्—आप दोनों; ग्राम्य-पशोः—शूकर या कूकर जैसे पशु का; मम—मुझे; मूढ-धियः—अत्यन्त मूर्ख; प्रभू—हे दोनों स्वामियो; अन्धे—गहरे; तमसि—अंधकार में; मग्नस्य—मग्न रहने वाले का; ज्ञान-दीपः—ज्ञान का प्रकाश; उदीर्यताम्—प्रकाशित कीजिये।

चूंकि आप दोनों महापुरुष हैं, अतः मुझे वास्तविक ज्ञान देने में समर्थ हैं। मैं अविद्या के अंधकार में डूबा रहने के कारण शूकर अथवा कूकर जैसे ग्राम्य पशु के समान मूढ़ हूँ। अतः मुझे उबारने के लिए ज्ञान का दीपक प्रज्वलित करें।

तात्पर्य : ज्ञान प्राप्त करने की यही विधि है। मनुष्य को चाहिए कि ऐसे महापुरुषों के चरणारविन्द में समर्पित हो ले जो वास्तविक दिव्य ज्ञान प्रदान कर सकें। इसलिए कहा गया है—  
तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्—“जो जीवन के उच्चादर्श तथा महत्त्व को जानने का इच्छुक है, उसे चाहिए कि प्रामाणिक गुरु के पास पहुँचे और उनकी शरण ग्रहण करे।” जो सचमुच ही अविद्या के अंधकार को दूर करने के लिए ज्ञान अर्जित करना चाहता है, उसे ही गुरु के समीप जाना चाहिए, न तो भौतिक लाभ के लिए, न ही किसी रोग से मुक्ति या चमत्कार प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाना चाहिये। गुरु के पास जाने का यह कोई ढंग नहीं है। तद् विज्ञानार्थम्—  
मनुष्य को चाहिए कि दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हेतु ही गुरु के पास जाए। दुर्भाग्यवश इस कलि-काल

में ऐसे अनेक धूर्त गुरु हैं, जो अपने शिष्यों को जादू दिखाते हैं और ऐसे अनेक मूढ़ शिष्य हैं, जो भौतिक लाभ हेतु ऐसा जादू देखना पसन्द करते हैं। ऐसे शिष्य अविद्या के अंधकार से बचने के लिए आध्यात्मिक जीवन बिताने में कोई रुचि नहीं रखते। कहा गया है—

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

“मैं अज्ञान के गहन अंधकार में उत्पन्न हुआ और मेरे गुरु ने ज्ञान के दीप से मेरी आँखें खोलीं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।” इससे गुरु की परिभाषा प्राप्त होती है। प्रत्येक व्यक्ति अविद्या के अंधकार में है, अतः हर एक को दिव्य ज्ञान से प्रकाशित होने की आवश्यकता है। सच्चा गुरु वही है, जो अपने शिष्य को प्रकाश प्रदान करके इस संसार के अविद्याजनित गहन अंधकार में सड़ने से उबार लेता है।

श्रीअङ्गिरा उवाच

अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप ।

एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-अङ्गिरा: उवाच—अंगिरा ऋषि बोले; अहम्—मैं; ते—तुमको; पुत्र-कामस्य—पुत्र की कामना करने वाले; पुत्र-दः—पुत्र देने वाला; अस्मि—हूँ; अङ्गिरा:—अंगिरा ऋषि; नृप—हे राजन्; एषः—यह; ब्रह्म-सुतः—भगवान् ब्रह्मा का पुत्र; साक्षात्—प्रत्यक्ष; नारदः—नारद मुनि; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान्; ऋषिः—साधु।

अंगिरा ने कहा—हे राजन्! जब तुमने पुत्र की कामना की थी तो मैं तुम्हारे पास आया था। दरअसल वही अंगिरा ऋषि हूँ जिसने तुम्हें यह पुत्र दिया था। ये जो तुम्हारे पास हैं, भगवान् ब्रह्मा के प्रत्यक्ष पुत्र, महान् ऋषि नारद हैं।

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ।

अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥ १८ ॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ।

ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावासादितुमर्हसि ॥ १९ ॥

### शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; त्वाम्—तुमको; पुत्र-शोकेन—अपने पुत्र के शोक के कारण; मग्नम्—डूबे हुए; तमसि—अंधकार में; दुस्तरे—न पार कर सकने योग्य; अ-तत्-अर्हम्—तुम जैसे पुरुष के लिए उपयुक्त नहीं है; अनुस्मृत्य—स्मरण करने के; महा-पुरुष—श्रीभगवान्; गोचरम्—जो ज्ञानसम्पन्न हैं; अनुग्रहाय—अनुग्रह करने के लिए; भवतः—आपके ऊपर; प्राप्तौ—आये हैं; आवाम्—हम दोनों; इह—इस स्थान पर; प्रभो—हे राजन्; ब्रह्मण्यः—जो परम सत्य को प्राप्त हैं; भगवत्-भक्तः—श्रीभगवान् का उच्च भक्त; न—नहीं; अवासादितुम्—शोक करने के; अर्हसि—योग्य हो।

हे राजन्! तुम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के परम भक्त हो। किसी भौतिक वस्तु की हानि के लिए इस प्रकार शोक करना तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है। अतः हम दोनों तुम्हें इस मिथ्या शोक से उबारने के लिए आये हैं, जो आप के अविद्या के अंधकार में डूबे रहने के कारण उत्पन्न है। जो आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पन्न हैं उनके लिए इस प्रकार से भौतिक लाभ तथा हानि से प्रभावित होना बिल्कुल अवांछनीय है।

तात्पर्य : इस श्लोक में कई शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। महापुरुष का अर्थ सिद्ध भक्त तथा श्रीभगवान् दोनों हैं। महा का अर्थ 'परम' तथा पुरुष का अर्थ 'पुरुष' या व्यक्ति है। जो व्यक्ति श्रीभगवान् की निरन्तर सेवा करता है, वह महा-पौरुषिक कहलाता है। शुकदेव गोस्वामी तथा महाराज परीक्षित को कभी-कभी महापौरुषिक कहा गया है। उन्नत भक्त को चाहिए कि वह परम भक्तों की सेवा करते रहने की कामना करे। श्री नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है—

*तांदेर चरण सेवि भक्त-सने वास*

*जनमे जनमे हय, एइ अभिलाषा।*

भक्त को चाहिए कि परम भक्त की संगति में रहने की सतत अभिलाषा करे और परम्परानुसार ईश्वर की सेवा में संलग्न रहे। मनुष्य को चाहिए कि वृन्दावन के परम गोस्वामियों के उपदेशों के माध्यम से श्री चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रसार करें। यह तांदेर चरण सेवि कहलाता है। गोस्वामियों के चरणकमलों की सेवा करते हुए भक्तों की संगति करनी चाहिए ( भक्त-सने वास)। भक्त का यही कार्य है। भक्त को न तो लाभ की कामना करनी चाहिए, न हानि पर शोक करना चाहिए। जब अंगिरा ऋषि तथा नारद ने देखा कि परम भक्त महाराज चित्रकेतु अज्ञान के अंधकार में गिर गया है और अपने पुत्र के भौतिक शरीर के लिये शोक कर रहा है, तो वे अहैतुक अनुग्रह-

वश उसे उपदेश देने पधारे जिससे वह इस अविद्या से बच सके। एक अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द *ब्रह्मण्य* है। कभी-कभी भगवान् की प्रार्थना में *नमो ब्रह्मण्य-देवाय* के रूप में सम्बोधन किया जाता है, जिसका अर्थ है ईश्वर को नमस्कार क्योंकि भक्त लोग उसकी सेवा करते हैं। अतः यह श्लोक बताता है—*ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावासादतुम् अर्हसि।* यह परम भक्त का लक्षण है। *ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा।* एक परम भक्त तथा स्वरूपसिद्ध भक्त को हर्ष या शोक करने का कोई कारण नहीं। वह तो सदैव बद्ध जीवन से परे है।

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ।

ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददाम्यहम् ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

तदा—तब; एव—निस्सन्देह; ते—तुमको; परम्—दिव्य; ज्ञानम्—ज्ञान; ददामि—दिया होता; गृहम्—तुम्हारे घर पर; आगतः—आया था; ज्ञात्वा—जानकर; अन्य-अभिनिवेशम्—अन्य बातों में उलझा हुआ; ते—तुम्हारा; पुत्रम्—पुत्र; एव—केवल; ददामि—दिया; अहम्—मैंने।

जिस समय पहले-पहल मैं तुम्हारे घर आया था, उसी समय मैं तुम्हें परम दिव्य ज्ञान देता, किन्तु जब मैंने देखा कि तुम्हारा मन भौतिक वस्तुओं में उलझा हुआ है, तो मैंने तुम्हें केवल एक पुत्र प्रदान किया जो तुम्हारे हर्ष और शोक का कारण बना।

अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ।

एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥ २१ ॥

शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ।

मही राज्यं बलं कोषो भृत्यामात्यसुहृज्जनाः ॥ २२ ॥

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ।

गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

अधुना—इस समय; पुत्रिणाम्—पुत्रवानों को; तापः—कष्ट; भवता—आपके द्वारा; एव—निस्सन्देह; अनुभूयते—अनुभव किया जाता है; एवम्—इस प्रकार; दाराः—सुपत्नी; गृहाः—घर; रायः—धन; विविध—नाना प्रकार के; ऐश्वर्य—ऐश्वर्य; सम्पदः—सम्पत्ति; शब्द-आदयः—शब्द इत्यादि; च—तथा; विषयाः—इन्द्रियतृप्ति की वस्तुएँ; चलाः—क्षणिक; राज्य—राज्य का; विभूतयः—ऐश्वर्य; मही—पृथ्वी; राज्यम्—राज्य; बलम्—बल; कोषः—खजाना; भृत्य—नौकर; अमात्य—मंत्री; सुहृत्-जनाः—मित्र; सर्वे—सभी; अपि—निस्सन्देह; शूरसेन—हे शूरसेन के राजा; इमे—ये; शोक—



शोक का; मोह—मोह का; भय—भय का; अर्ति—तथा दुख; दा:—देने वाले; गन्धर्व-नगर-प्रख्या:—गंधर्व नगर ( जंगल के मध्य एक बड़ा महल ) की माया-दृष्टि से प्रेरित; स्वप्न—स्वप्न; माया—माया; मनोरथा:—तथा कल्पनाएँ।

हे राजन्! अब तुम्हें ऐसे व्यक्ति के कष्ट का वास्तविक अनुभव हो रहा है, जिसके पुत्र तथा पुत्रियाँ होती हैं। हे सूरसेन देश के राजा! पत्नी, घर, राज्य का ऐश्वर्य, अन्य सम्पत्ति तथा इन्द्रिय अनुभूति के विषय—ये सब इस बात में एक-से हैं, कि वे अनित्य हैं। राज्य, सैनिक, शक्ति, कोष, नौकर, मंत्री, मित्र तथा सम्बन्धी—ये सभी भय, मोह, शोक तथा दुख के कारण हैं। ये गंधर्व-नगर की भाँति हैं, जिसे जंगल के बीच स्थित समझा जाता है, किन्तु जिसका अस्तित्व नहीं होता। चूँकि ये सब वस्तुएँ अनित्य हैं, अतः ये मोह, स्वप्न तथा मनोरथों से श्रेष्ठ नहीं हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में संसार का बन्धन वर्णित है। इस संसार में जीवात्मा के पास अनेक वस्तुएँ होती हैं, यथा—देह, संतान, पत्नी इत्यादि ( देहापत्य कलत्रादिषु )। मनुष्य ऐसा सोच सकता है कि ये उसे सुरक्षा प्रदान करेंगी किन्तु ऐसा असम्भव है। इतना सब होते हुए भी आत्मा को वर्तमान स्थिति का परित्याग करके दूसरी स्थिति ग्रहण करनी होती है। अगली स्थिति प्रतिकूल हो सकती है, किन्तु यदि अनुकूल भी रहे तो भी उसे इसका परित्याग करके दूसरा शरीर ग्रहण करना होगा। इस प्रकार इस जगत में दुखों का क्रम टूटता नहीं। किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को यह भली-भाँति समझना चाहिए कि इन वस्तुओं से वह कभी सुखी नहीं रह सकता। मनुष्य को चाहिए कि अपने आध्यात्मिक स्वरूप में स्थित रहकर भक्त के रूप में श्रीभगवान् की सदा सर्वदा सेवा करे। अंगिरा ऋषि तथा नारद मुनि ने महाराज चित्रकेतु को यही उपदेश दिया।

दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः ।

कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

दृश्यमाना:—देखे जाकर; विना—रहित, बिना; अर्थेन—वस्तु या सच्चाई; न—नहीं; दृश्यन्ते—देखे जाते हैं; मनोभवा:—मनोरथ; कर्मभि:—सकाम कर्म के द्वारा; ध्यायत:—चिन्तन करते हुए; नाना—विविध, अनेक; कर्माणि—सकाम कर्म; मनस:—मन से; अभवन्—प्रकट होते हैं।

स्त्री, संतान तथा सम्पत्ति जैसी दृश्य वस्तुएँ स्वप्न एवं मनोरथों के तुल्य हैं। वास्तव में हम जो कुछ देखते हैं उसका स्थायी अस्तित्व नहीं होता है। वे कभी दिखती हैं, तो कभी नहीं। अपने पूर्वकर्मों के अनुसार हम मनोरथ का सृजन करते हैं और इन्हीं के कारण हम आगे कार्य करते हैं।

**तात्पर्य :** प्रत्येक भौतिक वस्तु मानसिक कल्पना (मनोरथ) है, क्योंकि वह कभी दिखती है और कभी नहीं। रात्रि में स्वप्न में हमें बाघ तथा सर्प दिखते हैं, वे सचमुच उपस्थित नहीं रहते, किन्तु हम स्वप्न में देखी उन वस्तुओं से भयभीत होते हैं क्योंकि उनसे हम प्रभावित होते हैं, हर भौतिक पदार्थ एक स्वप्न की भाँति है, क्योंकि वास्तव में उनका स्थायी अस्तित्व नहीं होता है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अपने भाष्य में इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है—अर्थेन व्याघ्र-सर्पादिना विनैव दृश्यमानाः स्वप्नादि-भंगे सति न दृश्यन्ते तद् एवं दारादयोऽवास्तव-वस्तु-भूताः स्वप्नादयोऽवस्तुभूताश्च सर्वे मनोभवाः मनोवासना जन्यत्वान् मनोभवाः। रात्रि में स्वप्न में बाघ तथा सर्प देखे जाते हैं, किन्तु ज्योंही स्वप्न भंग होता है, तो उनका अस्तित्व नहीं रह पाता। इसी प्रकार यह भौतिक जगत भी हमारे मनोरथों की सृष्टि है। हम इस जगत में भौतिक साधनों का उपभोग करने आये हैं और अपने मनोरथों के द्वारा हम भोग की अनेकानेक वस्तुएँ खोज लेते हैं क्योंकि हमारा मन इन भौतिक वस्तुओं में निरन्तर मग्न हो जाता है। यही कारण है कि हमें विविध शरीर धारण करने पड़ते हैं। अपने मनोरथों के अनुसार हम नाना प्रकार की सफलताओं की इच्छा करते हुए अनेक प्रकार से कार्य करते रहते हैं और भगवान् के आदेश तथा प्रकृति के द्वारा हमें मनवांछित फल प्राप्त होता है (कर्मणा दैव-नेत्रेण)। इस प्रकार हम अधिकाधिक भौतिक मनोरथों में उलझे रहते हैं। इस भौतिक जगत में हमारी विपदा का यही कारण है। एक प्रकार के कार्य से हम दूसरे कार्य पैदा करते हैं और ये सब हमारे मनोरथों के प्रतिफल हैं।

अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ।

देहिनो विविधक्लेशसन्तापकृदुदाहतः ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

अयम्—यह; हि—निश्चय ही; देहिनः—जीवात्मा का; देहः—शरीर; द्रव्य-ज्ञान-क्रिया-आत्मकः—भौतिक तत्त्वों, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों समेत; देहिनः—जीवात्मा का; विविध—नाना प्रकार का; क्लेश—कष्ट; सन्ताप—तथा पीड़ा का; कृत्—कारण; उदाहतः—घोषित किया जाता है।

देहात्मबुद्धि के कारण जीवात्मा अपने शरीर में, जो भौतिक तत्त्वों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन समेत पाँच कर्मेन्द्रियों का संपुंज है, मग्न रहता है। मन के कारण जीवात्मा को तीन प्रकार के—अधिभौतिक, अधिदैविक तथा अध्यात्मिक-ताप सहने पड़ते हैं। अतः यह शरीर समस्त दुखों का मूल है।

तात्पर्य : पंचम स्कंध (५.५.४) में ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुए कहा है—  
*असन्नपि क्लेशद आस देहः*—अनित्य होते हुए भी यह शरीर संसार के समस्त दुखों का कारण है।  
 जैसाकि पिछले श्लोक में बताया जा चुका है, सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि मनोरथ पर आधारित है। मन कभी-कभी हमें सोचने के लिए प्रेरित करता है कि यदि हम एक वाहन (कार) खरीद लें तो हम भौतिक तत्त्वों का यथा पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि का लोहे, प्लास्टिक तथा पेट्रोल आदि के मिले जुले रूप से सुखोपभोग कर सकते हैं। पाँच भौतिक तत्त्वों (पंच-भूत) तथा आँख, कान और जिह्वा आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों व पाँच कर्मेन्द्रियों तथा हाथ और पांव के बल पर कार्य करने के कारण हम भौतिक स्थिति प्राप्त करने में उलझ जाते हैं। इस प्रकार हमें तापत्रय—*अध्यात्मिक, अधिदैविक तथा अधिभौतिक* सहने होते हैं। मन केन्द्र बिन्दु है क्योंकि उसी से सारी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। ज्योंही वह भौतिक वस्तु मिल जाती है, तो मन पर उसका प्रभाव पड़ता है और हम कष्ट पाते हैं। उदाहरणार्थ, पाँच तत्त्वों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों के बल पर हम एक बहुत सुन्दर कार बनाते हैं, किन्तु जब किसी दुर्घटना में वह कार नष्ट हो जाती है, तो मन को पीड़ा पहुँचती है, जिसके माध्यम से जीवात्मा को कष्ट होता है।

तथ्य तो यह है कि जीवात्मा मन के साथ सांठ-गांठ करके भौतिक स्थिति उत्पन्न करता है। चूँकि पदार्थ विनाशशील है, अतः भौतिक स्थिति के कारण जीवात्मा कष्ट भोगता है। अन्यथा

जीवात्मा समस्त प्रकार से सभी भौतिक स्थितियों से विरक्त है। जब मनुष्य ब्रह्म पद को प्राप्त होता है, जो आध्यात्मिक जीवन का सत्य है, तो उसे अच्छी तरह पता रहता है कि वह आत्मा है (अहं ब्रह्मास्मि) अतः उसे शोक या गर्व प्रभावित नहीं करते। भगवान् ने भगवद्गीता (१८.५४) में कहा है— ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति “जो इस प्रकार दिव्य पद पर स्थित होता है उसे तत्काल परब्रह्म की अनुभूति होती है और पूर्णरूपेण प्रसन्न हो जाता है। वह न शोक करता है, न किसी वस्तु की इच्छा रखता है।” अन्यत्र उन्होंने भगवद्गीता (१५.७) में ही कहा है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत में जीवात्माएँ मेरे ही शाश्वत भिन्न अंश हैं। बद्ध दशा के कारण वे मन समेत छह इन्द्रियों के साथ घोर संघर्ष कर रही हैं।” जीवात्मा निस्सन्देह भगवान् का अंश रूप है और भौतिक स्थितियों से प्रभावित नहीं होता, किन्तु मन (मनः) प्रभावित होता है, अतः इन्द्रियाँ प्रभावित होती हैं और जीवात्मा इस जगत में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता रहता है।

तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ।

द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; स्वस्थेन—स्वस्थ, सतर्क; मनसा—मन से; विमृश्य—विचार करके; गतिम्—वास्तविक स्थिति; आत्मनः—अपनी; द्वैते—द्वैत में; ध्रुव—स्थायी; अर्थ—वस्तु; विश्रम्भम्—विश्वास; त्यज—छोड़ दो; उपशमम्—शान्तिपूर्ण स्थिति; आविश—ग्रहण करो।

अतः हे चित्रकेतु! आत्मा की स्थिति पर ठीक से विचार करो अर्थात् यह समझने का प्रयत्न करो कि तुम कौन हो—शरीर, मन, या आत्मा? यह विचार करो कि तुम कहाँ से आये हो, यह शरीर छोड़कर कहाँ जाओगे और तुम भौतिक शोक के वश में क्यों हो? इस प्रकार तुम अपनी वास्तविक स्थिति जानने का यत्न करो, तभी तुम अनावश्यक आसक्ति से छुटकारा पा सकोगे। तब तुम इस विश्वास का भी परित्याग कर सकोगे कि यह भौतिक

जगत या अन्य कोई वस्तु जिसका श्रीकृष्ण की सेवा से सीधा सम्बन्ध नहीं है, शाश्वत है। इस तरह तुम्हें शान्ति प्राप्ति हो सकेगी।

तात्पर्य : वास्तव में कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज को गम्भीर बनाने का यत्न कर रहा है। दिग्भ्रमित सभ्यता के कारण सभी मनुष्य भौतिकता में उसी प्रकार घुस रहे हैं जैसे कुत्ते तथा बिल्लियाँ। वे सभी प्रकार के कुत्सित एवं पापपूर्ण कर्म करके अधिकाधिक उलझते जाते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में आत्म-साक्षात्कार सम्मिलित है क्योंकि इसमें सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा निर्देशित होकर पहले यह समझना होता है कि वह शरीर नहीं वरन् शरीर का स्वामी है। जब यह सीधी सी बात समझ में आ जाती है, तो वह जीवन-लक्ष्य की ओर स्वतः अग्रसर हो सकता है। चूँकि मनुष्यों को जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने की शिक्षा नहीं दी जाती इसलिए वे पागल मनुष्यों की तरह कार्य करते हैं और संसार में अधिकाधिक आसक्त होने लगते हैं। पथभ्रष्ट मनुष्य भौतिक स्थिति को नित्य मान बैठता है। उसे चाहिए कि वह भौतिक वस्तुओं के प्रति अपनी श्रद्धा तथा आसक्ति को छोड़ दे। तभी वह गम्भीर तथा शान्त बन सकेगा।

श्रीनारद उवाच

एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ।

यां धारयन्सप्तरात्राद्द्रष्टा सङ्कर्षणं विभुम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद मुनि ने कहा; एताम्—यह; मन्त्र-उपनिषदम्—मंत्र के रूप में उपनिषद् जिससे जीवन का उच्चादर्श प्राप्त किया जा सकता है; प्रतीच्छ—स्वीकार करो; प्रयतः—सावधानीपूर्वक ( मृत पुत्र का दाह संस्कार करने के पश्चात् ); मम—मुझसे; याम्—जो; धारयन्—स्वीकार करके; सप्त-रात्रात्—सात रात्रियों के बाद; द्रष्टा—तुम देखोगे; सङ्कर्षणम्—संकर्षण, श्रीभगवान्; विभुम्—भगवान् को।

नारद मुनि ने आगे कहा—हे राजन्! तुम एकाग्रचित्त होकर मुझसे अत्यन्त शुभ मंत्र ग्रहण करो। इसे स्वीकार कर लेने के बाद सात रातों में ही तुम साक्षात् भगवान् का दर्शन कर सकोगे।

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे  
 शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ।  
 सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं  
 प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥ २८ ॥

### शब्दार्थ

यत्-पाद-मूलम्—जिनके ( भगवान् संकर्षण के ) चरणकमल; उपसृत्य—शरण लेकर; नर-इन्द्र—हे राजन्; पूर्वे—  
 प्राचीन काल में; शर्व-आदयः—भगवान् महादेव जैसे बड़े-बड़े देवता; भ्रमम्—मोह; इमम्—यह; द्वितयम्—द्वैत भाव;  
 विसृज्य—त्याग कर; सद्यः—तुरन्त; तदीयम्—उसका; अतुल—अद्वितीय; अनधिकम्—अलंघ्य; महित्वम्—यश;  
 प्रापुः—प्राप्त किया; भवान्—आप; अपि—भी; परम्—परम धाम; न—नहीं; चिरात्—बहुत काल बाद; उपैति—प्राप्त  
 कर लगे।

हे राजन्! प्राचीनकाल में भगवान् शिव तथा अन्य देवताओं ने संकर्षण के चरणारविन्द  
 की शरण ली थी। इस प्रकार वे द्वैत-मोह से तुरन्त मुक्त हो गये और उन्होंने आध्यात्मिक  
 जीवन में अद्वितीय तथा अलंघ्य यश प्राप्त किया। तुम शीघ्र ठीक वैसा ही पद प्राप्त करोगे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत “नारद तथा अंगिरा द्वारा राजा चित्रकेतु  
 को उपदेश” नामक पन्द्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।